RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-05
May-2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

संस्कृत नाट्य–परम्परा में सूत्रधार की भूमिका

Dharam Singh

Assistant Professor, Deptt. of Sanskrit, Govt. College Bhattu Kalan Distt. Fatehabad (Hry.)

भारतीय नाट्य–परम्परा में सूत्रधार का विशेष महत्व है। सूत्रधार शब्द सूत्र तथा धार के योग से निष्पन्न हुआ है। सूत्र का सामान्य अर्थ है धागा या तार तथा धार का अर्थ है धारण करने वाला। परन्तु नाटक में सूत्र का अर्थ धागा न होकर 'कथानक' के रूप में स्वीकार किया जाता है। नाटक में सूत्रधार का अर्थ है–वह पात्र जो नाटक के सम्पूर्ण कथानक को धारण करता है। संस्कृत नाट्य–साहित्य में सूत्रधार को सम्पूर्ण नाट्य–अर्थों का प्रकाशक माना जाता है। इसे 'नट' भी कहा जाता है। नाटक के मंगलाचरण या नान्दीपाठ के पश्चात नाटक की सम्पूर्ण कथा का संचालन सूत्रधार ही करता है। नाटक में सूत्रधार की परम्परा अति प्राचीन काल से विद्यमान है। नाट्य–शास्त्र के प्रणेता अचार्य भरत ने सूत्रधार को परिभाषित करते हुए कहा है–

नाट्य–प्रयोग कुशलः नानाशिल्प समन्वितः।
पादच्छंदविधानज्ञः सर्वशास्त्र विचक्षणः।।
स्मृतिमान, मतिमानः धीरः उदार स्थितवाक् कवि।
अरोगो मधुर क्षान्तो दान्तश्चैव प्रियवंद।।[1]

अर्थात संस्कृत रंगमंच का सूत्रधार नाटक के प्रयोग में कुशल होता है। वह रंगशिल्प या रंगमंच के विभिन्न अंगों का पारखी होता है। वह सम्पूर्ण छंद शास्त्र का ज्ञाता होने के साथ–साथ सभी शास्त्रों को ज्ञाता होता है। वह स्मृतिमान, मतिमान, धीर, उदार, प्रसिद्ध कवि, अरोगी, मधुर तथा प्रिय बोलने वाला होता है।

संस्कृत का नाट्य–शास्त्र किसी एक धारा में प्रवाहित नहीं होता है। संस्कृत में कुल दस प्रकार के रूपक तथा अठारह प्रकार के उपरूपक होते हैं। दस प्रकार के रूपक इस प्रकार हैं–नाटक, प्रकरण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रहसन तथा भाण। इस प्रकार के रूपकों के अतिरिक्त अठारह प्रकार के उपरूपक निम्न हैं– नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्य रासक, प्रस्थानक, जल्लाप्य, काव्य, प्रेखंण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश, भणिका। अतः संस्कृत का नाट्य साहित्य कुल 28 अंगों–उपांगों में विभक्त हो जाता है, इसलिए सूत्रधार को भी अठाईस भागों में विभक्त करना चाहिए। क्योंकि रूपक के प्रत्येक अंग की विषय–वस्तु में किंचित् अन्तर तो अवश्य होता है। परन्तु रूपकों के इतने भेद होने पर भी सूत्रधार की भूमिका में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है। सूत्रधार रूपक के प्रत्येक उपांग में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता है। परन्तु जब यह नाटक अलग–अलग लोक–नाट्यों में विभाजित हो जाता है, तो सूत्रधार के नामों में किंचित् परिवर्तन हो जाता है। जगदीश चन्द्र माथुर ने इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए कहा है कि–तमिलनाडू के विथिनाटकम् में सूत्रधार को कट्टिभंगरन कहा जताा है। भवई में सूत्रधार को नायक कहते हैं। उत्तर प्रदेश के नकल और भगत नामक प्रदर्शन में सूत्रधार को खलीफा नाम से सम्बोधित किया जाता है।[2]

सूत्रधार के कार्य–

जहाँ तक सूत्रधार के कार्यों का प्रश्न हैं– सूत्रधार रंगमंच पर अनेक प्रकार के कार्य सम्पन्न करता है। वह सबसे पहले नाटक की भूमिका तैयार करता है। वह नाटक की विषय–वस्तु को बीज–रूप में प्रस्तुत करता है। वह नाटकीय बीज ही आगे चलकर 'कार्य' के रूप में परिणत होता है। सूत्रधार के कार्यों के विषय में हृषीकेश सुलभ का कहना है कि –"सूत्रधार नाट्य–प्रस्तुति के गंभीर और मार्मिक क्षणों को विश्लेषित करता है तथा अपनी टिप्पणियों से सहजता के साथ इस विश्लेषण को सम्प्रेषित करता है। दक्षिण की कई नाट्य–शैलियों के सूत्रधार मंच पर प्रवेश से पूर्व अन्य पात्रों का परिचय देते हैं। इस परिचय के लिए सूत्रधार कभी संवाद, तो कभी गीतों का उपयोग करता है। वह अपनी मुद्राओं , संकेतों और अंगिक चेष्टाओं द्वारा गीतों के अर्थ भी खोलते चलता है।[3]

सूत्रधार के सबसे प्रमुख कार्य के रूप में कहा जाता है कि वह सबसे पहले रंगमंच पर उपस्थित होता है तथा नाटककार तथा उसके नाटक का संक्षिप्त परिचय देता है। वह नाटककार का नामोल्लेख करता है तथा नाटक की विषय वस्तु को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करता है। अतः यहाँ पर सूत्रधार नाटकीय कथावस्तु के सूचक या प्रस्तावक के रूप में उपस्थित होता है। सूत्रधार सूचक तथा प्रस्तावक तो होता ही है साथ–साथ वह कथावस्तु का वाचक, व्याख्याता तथा टिप्पणीकार के रूप में भी उपस्थित होता है।

संस्कृत का नाट्य–शिल्प एक ढर्रे या शिल्प पर चलता है। संस्कृत के नाटक किस प्रकार लिखे जाएंगे, इन सब बातों का निर्धारण प्राचीन काल में ही कर लिया गया था। आचार्य भरत का नाट्य–शास्त्र, धनंजय का दशरूपक, विश्वनाथ का साहित्य दर्पण, आचार्य हेमचन्द्र गुणचन्द का नाट्य दर्पण, पंडितराज जगन्नाथ का रसगंगाधर आदि पुस्तकों में नाट्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों को विश्लेषित किया गया। इन सभी ग्रथों में सूत्रधार को एक आवश्यक तत्व (पात्र) के रूप में स्वीकार किया गया है। संस्कृत की नाट्य–परम्परा

RRIJM 2015, All Rights Reserved

विकसित होती रही, तथा अनेक तत्व इसके अन्तर्गत समाहित होते गए तथा कुछ तत्व छूटते गए, किन्तु सूत्रधार की परिकल्पना न्यूनाधिक रूप से प्रत्येक प्रकार के नाट्य–रूपों में चलती रही।

प्राचीन काल के नाटकों को सूत्रधार का कार्य केवल नाटक तथा नाटककार का परिचय देना था किन्तु धीरे–धीरे सूत्रधार की भूमिका में भी परिवर्तन आता गया तथा सूत्रधार को नाटक के एक पात्र के रूप में भी लिया जाने लगा। इस संदर्भ में रीता कुमार का कहना है कि–"शिल्प की दृष्टि से इसमें लोक नाट्य, संस्कृत नाट्य–परम्परा तथा पारसी रंगमंच का समन्वित प्रभाव दिखाई पड़ता है। संस्कृत नाटकों के समान सूत्रधार का प्रयोग (यद्यपि एक पात्र के रूप में) तथा दृश्य परिवर्तन में दर्शकों की कल्पना का सहारा लिया गया।"[4]

भारतीय दर्शन आनन्दवादी दर्शन है। भारतीय जनमानस प्रत्येक स्थिति में आनन्द की अनुभूति करना जानता है। इसलिए नाटक में भी 'विदूषक' नामक एक हास्यवादी पात्र की परिकल्पना कर ली गई। किन्तु यह आनन्द तभी आएगा जब दर्शक या प्रेक्षक को सम्पूर्ण नाटकीय स्थिति का ज्ञान हो। नाटक को शुरू से देखकर ही आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। नाटक का आरम्भ जितना रमणीय होगा, उसका नाटकीय तनाव उतना ही गहन होगा। नाटक के आरम्भ की स्थिति सूत्रधार पर निर्भर करती है। एक कुशल सूत्रधार नाटक की उत्तम भूमिका निर्मित कर देता है, जिसके कारण दर्शकों का मानसिक जुड़ाव नाटकीय कथावस्तु के साथ हो गया तथा वे नाटक में आनन्द लेने लगते हैं। यदि नाटक का कुछ भाग मंचित होने के पश्चात कोई दर्शक प्रेक्षाग्रह में प्रवेश करता है, तो उसका आधा ध्यान तो इस बात में ही लगा रहेगा कि पता नहीं कौन सा नाटक है तथा कौन इसके लेखक हैं। अतः नाटक का सम्पूर्ण आनन्द लेने के लिए नाटक को आरम्भ से लेकर अन्त तक देखना आवश्यक है। नाटक के आरम्भ में जो भी दृश्य–मंचित किए जाते हैं, उन सभी दृश्यों तथा घटनाओं का नियन्ता सूत्रधार ही होता है।

संस्कृत नाट्य–परम्परा की सूत्रधार नामक रंगयुक्ति क्या वर्तमान में भी विद्यमान है। अगर है तो किस रूप में तथा किस स्थिति में। वस्तुत संस्कृत नाटकों से जो भी नाट्य–पद्धतियाँ विकसित हुई, उनमें किसी न किसी रूप में सूत्रधार उपस्थित है। सूत्रधार की इस उपस्थिति के विषय में हृषीकेश सुलभ का कहना है कि–''समकालीन हिन्दी रंगमंच पर सूत्रधार को तलाश करने के क्रम में गहरी निराशा हाथ लगती है। आज वह स्पष्टतः दो भागों में बँट गया है। उसकी उपस्थिति नाटक के पाठ के भीतर न के बराबर है, जबकि नाटक के पाठ के बाहर वह लगातार उपस्थित है। बाह्य–पात्र के रूप में उपस्थित इस सूत्रधार को हम निर्देशक के रूप में जानते है। इस सूत्रधार की शक्ति निरन्तर बढ़ती गई। धीरे–धीरे इसने अभिनेता तथा दर्शक की शक्ति पर जबरन कब्जा कर लिया।"[5]

हृषीकेश सुलभ के उपर्युक्त कथन को आधार मानकर कहा जा सकता है कि संस्कृत नाट्य–परम्परा से उत्पन्न सूत्रधार नामक पात्र हर नाटक में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। आजकल के नाटक जब मंच पर मंचित किए जाते हैं, तो उसके मंच का सम्पूर्ण दायित्व सूत्रधार का ही होता है। यह सूत्रधार चाहे मंच पर उपस्थित न हो, किन्तु वह सभी पात्रों के कार्य–व्यापार में, नाटकीय घटनाओं में, नाटकीय तनाव में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाता रहता है। संस्कृत नाट्य–परम्परा के आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक सूत्रधार महत्व यथावत् है। नाटक ने अपने शिल्प में अनेक प्रकार के परिवर्तन कर लिए, किन्तु सूत्रधार नाटक का आवश्यक तथा अनिवार्य अंग बना रहा।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सूत्रधार नाटक तथा नाटकीय कथावस्तु का नियन्ता है। नाटक के प्रारम्भ में वह नाटक तथा नाटककार का संक्षिप्त परिचय देता है। वह नाटकीय विषय–वस्तु का 'बीज' रूप प्रेक्षकों के समक्ष प्रस्तुत करता है, जिसके कारण प्रेक्षक नाटकीय कथावस्तु के साथ जुड़ाव महसूस करते हैं। वर्तमान समय में सूत्रधार की भूमिका में कुछ परिवर्तन अवश्य आया है। आजकल के नाटकों में सूत्रधार को नाटक के मुख्य पात्र के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु प्राचीन काल में सूत्रधार की भूमिका नाटक तथा नाटकार का परिचय देने मात्र तक ही सीमित थी।

संदर्भ ग्रंथ–सूची

1. आचार्य भरत, नाट्य–शास्त्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 1980, पृ०–35/42/52
2. माथुर, जगदीशचन्द्र, परम्पराशील नाट्य, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृ०–68–69
3. सुलभ हृषीकेश, रंगमंच का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ०–39
4. रीता कुमार, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नटकः मोहन रोकश के विशेष संदर्भ में, विभु प्रकाशन, साहिबाबाद, पृ०–228
5. सुलभ हृषीकेश, रंगमंच का जनतंत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ०–40

RRIJM 2015, All Rights Reserved